National Journal of Advanced Research
Online ISSN: 2455-216X; Impact Factor: RJIF 5.12
www.allnationaljournal.com
Volume 2; Issue 3; June 2016; Page No. 43-45

अध्यात्म में सृष्टि प्रक्रिया

[1]डॉ0 राजकुमार, [2]डॉ0 नागेन्द्र नागर

शोध–छात्र (डी0लिट0) संस्कृत विभाग, बी0एस0ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।
एसोसिएट प्राफेसर संस्कृत विभाग, बी0एस0ए0 कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

सार
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि प्रक्रिया कैसे कब और किसने की यह प्रष्न आधुनिक युग में अनसुलझी गुत्थी बना हुआ है। वैज्ञानिको के अनुसार– सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि प्रक्रिया अणु और परमाणुओं के रासायनिक संयोग से हुई है जिसका आदि कारण विज्ञान है।समस्त अध्यात्म जगत् का कहना है कि इन अणु और परमाणु से भी अति सूक्ष्म तत्त्व ब्रह्म अथवा आत्मा है जैसा कि कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली के विंशतिवें श्लोक में कहा गया है–अणोरणीयान्महतो महीयान्। इसी ब्रह्म व उसकी आद्या शक्ति माया से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना हुई है अर्थात् यह ब्रह्म ही इसका निमित्त व उपादान कारण है। इस शोध पत्र से अन्वेषकों को सृष्टि प्रक्रिया विषयक ज्ञान की प्राप्ति होगी

प्रस्तावना
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि प्रक्रिया के रहस्य को जानने के लिये मानव अनादि काल से ही प्रयासरत है कि इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि किसने, कब और कैसे की ? आधुनिक युग में यह प्रश्न एक अनसुनलझी गुत्थी बना हुआ है। वैज्ञानिक इसका आदि कारण विज्ञान को मानते हैं। सृष्टि प्रक्रिया के इस रहस्य को जानने के लिये भारतीय ऋषि–मुनियों ने गहन आत्म तत्त्व चिन्तन किया और उन्होंने इसके सन्दर्भ में दार्शनिक (अध्यात्मवादी) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। सृष्टि प्रक्रिया का विवेचन सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त में देखने को मिलता है। सर्वप्रथम आदि पुरुष ब्रह्म से विराट उत्पन्न हुआ।उससे अधिष्ठाता के रूप में पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न होकर जगत् के आगे तथा पीछे अतिक्रमण कर गया। देवताओं और ऋषियों ने पुरुषरूप हवि के द्वारा यज्ञ को सम्पन्न किया,जिसमें सब कुछ होम कर दिया गया, उस यज्ञ से दधि मिश्रित घृत एकत्रित किया गया; जिससे वायु में विचरण करने वाले (पक्षियों) तथा वन्य पशु और ग्राम्य पशुओं को उत्पन्न किया गया। उस यज्ञ से ऋचायें, साम तथा यजुष और छन्द उत्पन्न हुये।[1]

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत।।[2]

उस पुरुष (ब्रह्म) के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य,मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

नाभ्यां असीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।[3]

इस पुरुष (ब्रह्म) की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक ,पैरो से भूमि और कानों से दिशायें उत्पन्न हुईं– इस प्रकार लोकों की रचना हुई।
श्रीमद्भागवत महापुराण में भी ऐसा ही कहा गया है–

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत।
गुणानों वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ।।[4]

इस विराट पुरुष के सिर से स्वर्गलोक, पैरों से पृथ्वी और नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ। इनमें क्रमशः सत्त्व, रज और तम–इन तीनों गुणों के परिणामरूप देवता, मनुष्य और प्रेतादि देखे जाते हैं।
नासदीय सूक्त में सृष्टि का रचियता ईश्वर को बताया गया गया हे–इयंविसृष्टिर्यतआबभूबयदिवादधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ् वेद यदि वा न वेद।।[5]
इसी तथ्य को अर्थववेद (अयविष्ठा जनयन कर्वराणि स हि घृणिरूरुर्व राय गातुः । स प्रत्युदैद धरूणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वातन्वमैरयत)[6] के मंत्र से स्पष्ट किया गया है कि परब्रह्म परमात्मा ही समस्त पदार्थों का मूल कारण है।
श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार परब्रह्म परमात्मा ने ही अपनी आद्या शक्ति माया के द्वारा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (सृष्टि) का निर्माण किया है–

स वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सद्सदात्मिका।
मायानाममहाभागययेदंनिर्ममे विभुः।।[7]

जब यह माया काल शक्ति के प्रभाव से क्षोभ को प्राप्त हुई तब उस परमात्मा ने अपने अंश पुरुष रूप (ब्रह्म) से उसमें चिदाभास रूप बीज स्थापित किया। तब काल की प्रेरणा से उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट हुआ। वह मिथ्या अज्ञान का नाशक होने के कारण विज्ञानस्वरूप और अपने सूक्ष्म रूप से स्थित प्रपंच की अभिव्यक्ति करने वाला था। उस महत्तत्त्व ने भगवान की दृष्टि पड़ने पर इस विश्व रचना के लिये अपना रूपान्तरण किया। महत्तत्त्व के विकृत होने पर अहंकार की उत्पत्ति हुई। वह अहंकार वैकारिक (सात्विक), तैजस् (राजस्) और तामस् के भेद से तीन प्रकार का है। अहं तत्त्व में विकार होने पर वैकारिक अहंकार से मन, तेजस् अहंकार से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तथा तामस अहंकार से सूक्ष्म भूतों का कारण शब्द तन्मात्रा उत्पन्न हुई और उससे दृष्टान्त रूप से आत्मा का बोध कराने वालाआकाश उत्पन्न हुआ। भगवान की दृष्टि जब आकाश पर पड़ी तब फिर उससे स्पर्श तन्मात्रा उत्पन्न हुई और उसके विकृत होने पर वायु की उत्पत्ति हुई। वायु ने आकाश के सहित विकृत होकर रूप तन्मात्रा की रचना की और उससे संसार का तेज उत्पन्न हुआ। फिर परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर वायु युक्त तेज ने काल माया और चिदंश के योग से विकृत होकर रस तन्मात्रा के कार्य जल को उत्पन्न किया। तदनन्तर तेज से युक्त जल ने ब्रह्म का दृष्टिपात होने पर काल, माया और चिदंश के योग से गन्धमयी पृथ्वी को उत्पन्न किया।[8] सर्वशक्तिमान भगवान ने जब देखा कि आपस में संगठित न होने के कारण ये मेरी महत्तत्त्वादि शक्तियाँ विश्व रचना के कार्य में असमर्थ हो रही है; तब वे काल शक्ति को स्वीकार करके एक साथ महत्तत्त्व, अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा और एकादश इन्द्रियाँ इन तेईस तत्त्वों के समुदाय में

प्रविष्ट हो गये। उनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने जीवों के सोये हुये अदृष्ट को जाग्रत किया और परस्पर विलग हुये। उस तत्त्व समूह को उन्होंने आपस में मिला दिया। इस प्रकार जब भगवान ने अदृष्ट को कार्योन्मुखकिया,तब उस तेईस तत्त्वों के समूह ने भगवान की प्रेरणा से अपने अंशों द्वारा अधिपुरुष–विराट को उत्पन्न किया। जब भगवान ने अंशरूप से अपने उस शरीर में प्रवेश किया, तब वह विश्व रचना करने वाला महत्तत्त्वादि का समुदाय एक दूसरे से मिलकर परिणाम को प्राप्त हुआ। यह तत्त्वों का परिणाम ही विराट पुरुष है जिसमें चराचर जगत् विद्यमान है। जल के भीतर जो अण्डरूप आश्रयस्थान था, उसमें वह हिरण्यमय विराट पुरुष सम्पूर्ण जीवों को साथ लेकर एक हजार दिव्य वर्षों तक रहा। वह विश्वरचना करने वाले तत्त्वों का गर्भ (कार्य) था तथा ज्ञान, क्रिया और आत्मा–शक्ति से सम्पन्न था । इन शक्तियों से उसने सवयंअपने क्रमशः एक (हृदयरूप) दस (प्राणरूप) और तीन (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) विभाग किये। यह विराट पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों का आत्मा, जीवरूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्राणियों में अभिव्यक्त होने के कारण भगवान का आदि अवतार है तथा यह सम्पूर्ण भूतसमुदाय इसी से प्रकाशित होता है। भगवान ने महत्तत्त्वादि की वृत्तियों को जगाने के लिये अपने चेतनरूप तेज से उस विराट को प्रकाशित किया, व उसे जगाया। विराट पुरुष के पहले मुख प्रकट हुआ उसमें लोकपाल अग्नि अपने अंश वागिन्द्रिय के समेत प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है। फिर विराट पुरुष के तालु उत्पन्न हुआ; उसमें लोकपाल वरुण अपने अंश रसनेन्द्रिय के सहित स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है। इसके पश्चात उस विराट पुरुष के नथुने प्रकट हुये; उनमें दोनों अश्विनीकुमार अपनेक अंश घ्राणेन्द्रिय के सहित प्रविष्ट, हुये जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है। इसी प्रकार जब उस विराट देह में आँखें प्रकट हुईं तब उनमें अपने अंश नेत्रेन्द्रिय के सहित– लोकपति सूर्य ने प्रवेश किया, जिस नेत्रेन्द्रिय से पुरुष को विविध रूपों का ज्ञान होता है। फिर उस विराट विग्रह में त्वचा उत्पन्न हुई; उसमें अपने अंश सहित वायु स्थित हुआ, जिससे जीव स्पर्श का अनुभव करता है। जब इसके कर्ण छिद्र प्रकट हुये, तब उनमें अपने अंश श्रवणेन्द्रिय के सहित दिशाओं ने प्रवेश किया,जिस श्रवणेन्द्रिय से जीव को शब्द का ज्ञान होता है। फिर विराट शरीर मे चर्म उत्पन्न हुआ;उसमें अपने अंश रोमों के सहित औषधियाँ स्थित हुईं, जिन रोमों से जीव खजुली आदि का अनुभव करता है।इसके पश्चात् उसके लिंग उत्पन्न हुआ। अपने इस आश्रय में प्रजापति ने अपने अंशवीर्य के सहित प्रवेश किया, जिससे जीव आनन्द का अनुभव करता है। विराट पुरुष के गुदा प्रकट हुई; उसमें लोकपाल मित्र ने अपने अंश पायु–इन्द्रिय के सहित प्रवेशकिया, इससे जीव मल त्याग करता है। इसके पश्चात् उसके हाथ प्रकट हुये; उनमें अपनीग्रहण –त्यागरूपाशक्ति के सहित देवराज इन्द्र ने प्रवेश किया, इस शक्ति से जीव अपनी आजीविका प्राप्त करता है। इसके पश्चात् उस पुरुष के पैर, बुद्धि, हृदय और मन के सहित चन्द्रमा स्थित हुआ। इस मन शक्ति के द्वारा जीव संकल्प–विकल्पात्मक विकारों को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् विराट पुरुष में अहंकार उत्पन्न हुआ; इस अपने आश्रय में क्रियाशक्ति सहित अभिमान (रुद्र) ने प्रवेश किया। इसके पश्चात् इसमें चित्त प्रकट हुआ। उसमें चित्त शक्ति के सहित महत्तत्त्व (ब्रह्मा) स्थित हुआ; इस चित्तशक्ति से जीव विज्ञान चेतना को प्राप्त करता है।इस विराट पुरुष के सिर, नाभि और पैर से क्रमशः द्युलोक (स्वर्गलोक), अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोक उत्पन्न हुआ। इनमें सत्त्वगुण की अधिकता के कारण देवता स्वर्गलोक में, मनुष्य और उनके उपयोगी गौ आदि जीव रजोगुण की प्रधानता के कारण पृथ्वी में तथा तमोगुणी स्वभाव वाले होने से रुद्र के पार्षदगण भूत, प्रेत आदि) दोनों के बीच में स्थित अन्तरिक्ष लोक में रहते हैं।[9]

मनुस्मृति के अनुसार भी समस्त सृष्टि का सृष्टि कर्त्ता परमब्रह्म परमात्मा ही है–

योऽसावतीन्द्रियग्राहयःसूक्ष्मोव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयुमुदवभौ ।।[10]

जो भगवान अतीन्द्रिय, सूक्ष्मस्वरूप, अव्यक्त, नित्य, सभी प्राणियों की आत्मा, एवं अचिन्त्य हैं; वे ही सृष्टि रचना की दृष्टि से स्वयं ही प्रकट हुये।

उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टि करने की इच्छा से सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की और उसमें शक्ति रूपी बीज को छोड़ा। वह बीज सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाश वाला, सुवर्णवत् अण्डस्वरूप वाला हो गया। उससे सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवतसरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्त्दण्डमकरोद् द्विधा।।[11]

ब्रह्म ने उस अण्डे में एकवर्ष (ब्रह्म का एक दिन इकत्तीस खरब, दस अरब, चालीस करोड़ मानव वर्ष) तक निवास करके अपने ध्यान के द्वारा उस अण्डे को दो टुकडों में विभक्त किया। उस अण्डे के दोनों टुकड़ों से ब्रह्म ने स्वर्ग तथा पृथ्वी की सृष्टि की और बीच में आकाश, आठ दिशायें एवं जल के आश्रयभूत समुद्र की सृष्टि की। ब्रह्मा ने मन की सृष्टि की, मन से पहले अहंकारकी, अहंकार से पहले महत् तत्त्व बुद्धि की तथासम्पूर्ण त्रिगुणों (सत्त्व, रज और तम) से युक्त विषयों की और रूप रसादि विषयों का ग्रहण करने वाली नेत्र, जिह्वादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं गुदादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) तन्मात्राओं की सृष्टि की। अनन्त शक्ति वाले उन अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध के सूक्ष्म अवयवों को उन्हीं के अपने अपने विकारों में मिलाकर समस्त प्राणियों की सृष्टि की।[12]

तेषामिदंतुसप्तानां पुरुषाणांमहौजसाम्।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद् व्ययम्।।

विनाशरहित उस ब्रह्म से महाशक्तियुक्त सात पुरुषों (महत्, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) सूक्ष्म मूर्ति के अंशों से यह विनाशशील जगत् उत्पन्न हुआ।[13]

मुण्डकोपनिषद के अनुसार अक्षर ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है –

यथोर्णनाभिः सृजते ग्रहणते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा क्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।[14]

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है जैसे पृथ्वी में औषधियॉं उत्पन्न होती हैं और जैसे पुरुष से केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार इस अक्षर (ब्रह्म) से जगत् उत्पन्न होता है।

स यथोर्णनाभिस्तुन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिं व्युच्चरन्त्येव मेवा स्मादात्मानः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युचरन्ति अर्थात जिस प्रकार उर्ण नाभि (मकड़ा) तन्तुओं पर उपर की ओर जाता है तथा जैसे अग्नि से अनेकों क्षुद्र चिनगारियां उठती हैं उसी प्रकार इस आत्मा (ब्रह्म) से समस्त संसार उत्पन्न होता है।[15]

ईशावास्योपनिषद् में समस्त संसार को ब्रह्म से व्याप्त बताया गया है– ऊँ ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्[16]

एक सहस्र चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन और एक सहस्र चतुर्युगी की ब्रह्मा की एक रात ही होती है। 'ब्रह्मा के एक दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त (सूक्ष्म शरीर) से संसार उत्पन्न होता है और ब्रह्मा के रात्रि के प्रवेश काल में उसी में विलीन हो जाता है। इसी ब्रह्म से समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देवगण व समस्त भूत विविध रूप से उत्पन्न होते हैं।[17]

सांख्य दर्शन के अनुसार जगत् की सृष्टि पुरुष (आत्मा) और प्रकृति के संयोग से होती है।

> पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं यथा प्रधानस्य।
> पंगुऽन्धुवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।[18]

सांख्य की भांति श्रीमद्भगवद्गीता जगत् का उपादान कारण प्रकृति को मानती है जिसे क्षर[19] पराऽपरा प्रकृति [20] क्षेत्र[21] अधिभूत[22] तथा अश्वत्थ वृक्ष से व्यक्त किया गया है । जगत् की उपादान भूता प्रकृति अनादि है तथा राग द्वेषादि संसार इसी से उत्पन्न हुआ है ।[23] पंच महाभूत (आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी) तथा इन्द्रियों की विषय प्रकृति ही इन्द्रियादि का उपादान कारण है। तेईस तत्व (बुद्धि अहंकार आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी पंचतन्मात्रायें पंचज्ञानेन्द्रियाँ पंचकर्मेन्द्रियाँ तथा मन) प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। इन्ही को जगत् कहा गया है।[24] श्रीमद्भगवद्गीता की उक्त सृष्टि प्रकिया सांख्य कारिका में सुस्पष्ट है।[25]

अथर्ववेद के एकादशवें काण्ड के चोथे सूक्त के तीसरे मंत्र से स्पष्ट है कि प्राण रूप परमात्मा अपने स्वेच्छा रूप क्रन्दन से त्रिगुणात्मक प्रकृति में चेतन् सत्ता रूप गर्भ को धारणकरता है।[26] प्रकृति अनादि काल से सृष्टि का सृजन करती चली आ रही है । यही जीवात्मा के बन्धन का कारण है। प्रलय काल में समस्त संसार इसी प्रकृति में विलीन हो जाता है और ईश्वर पुनः संसार को रचता है।[27] श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है ब्रह्म जीवो के कर्मफल प्रदानार्थ प्रकृति द्वारा पुनः जगत् की सृष्टि और लय करता है ।[28] अथर्ववेद मे भी ऐसा ही कहा गया है–

> यन्मन्युर्जायाभवहत्संकल्पस्यगृहादधि ।
> क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्।।[29]

अर्थात्–परमात्मा अपनी शक्ति द्वारा प्रकृति को वश में करके सृष्टि को पुनः प्राणियों के कर्मानुसार रचते हैं।

वेदान्त के अनुसार यह श्ब्रह्म इस जगत् का उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। जिस प्रकार मकड़ी अपने चेतन्यांश से जाले की उत्पत्तिके प्रति निमित्त कारण है तथा शरीर से उस जाले के प्रति उपादान कारण है; उसी प्रकार ईश्वर भी शुद्ध–चैतन्य की प्रधानता से जगत् का निमित्तकारण है तथा अपनी उपाधि 'माया' के प्राधान्य से इस जगत् का उपादान कारण है–

> शक्तिद्वयवदज्ञानोपहितं चैतन्यं स्वप्रधानतया निमित्तं, स्वोपाधि प्रधनतया उपादानं च भवति, यथा लूता तन्तुकार्यं प्रति स्वप्रधानतया निमित्तं स्वरीरप्रधानतया उपादानं च भवति।[30]

वेदान्त में समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि प्रक्रिया को समझाने के लिये पंचीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है जो इस प्रकार है–

> द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
> स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पञ्च पञ्च ते।।

स्थूलभूत पंचीकृत हैं।आकाशादि पाँच महाभूतों में से प्रत्येक को दो दो भागों में विभक्त करके उन (5×2 = 10) दस भागों में से प्राथमिक पाँच भागों (प्रत्येक महाभूतके अर्द्धांश) को पुनः चार–चार बराबर भागों में विभक्त करके उन (चार–चार अष्टमाशों) को अपने–अपने अर्धांश भाग के अतिरिक्त अन्य सभी (चारों) अर्द्धांशों से मिलाने की प्रक्रिया ही पंचीकरण है। इन पंचीकृत महाभूतों से क्रमशः एक–दूसरे से ऊपर स्थित भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्यम् नामक सात ऊर्ध्व लोकों का निर्माण होता है तथ इसी प्रकार क्रमशः एक–दूसरे से नीचे स्थित अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल तथा पाताल नामक सात लोकों (कुल चौदह लोकों) से युक्त ब्रह्माण्ड की और उसमें स्थित चतुर्विध (जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज) स्थूल शरीरों एवम् उनके पोषणार्थ अन्न–जलादि की उत्पत्ति होती है।[31]

निष्कर्षतः उपरोक्तअध्यात्म में सृष्टि प्रक्रिया के सन्दर्भ में दिये गये तथ्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता हे कि समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि प्रक्रिया ब्रह्म और उनकी आदि शक्ति माया अथवा प्रकृति के द्वारा हुई है अर्थात् ब्रह्म ही इस समस्त सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण है और प्रकृति इसका उपादान कारण है।समस्त संसार में जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज ये चार प्रकार के स्थूल शरीर ही विद्यमान हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद,10/90/5–9
2. ऋग्वेद,10/90/13
3. ऋग्वेद,10/90/14
4. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/6/27
5. ऋग्वेद,10/129/7
6. अथर्व वेद, 7/3/1
7. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/5/25
8. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/5/26–35
9. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/6/1–29
10. मनुस्मृति,1/7
11. मनुस्मृति,1/12
12. मनुस्मृति,1/13–17
13. मनुस्मृति,1/19
14. मुण्डकोपनिषद्,1/1/7
15. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/1/20
16. ईशावास्योपनिषद्,1
17. श्रीमद्भगवद्गीता,8/17–19
18. सांख्यकारिका, 21
19. श्रीमद्भगवद्गीता, 15/16
20. श्रीमद्भगवद्गीता, 7/4
21. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/1
22. श्रीमद्भगवद्गीता, 8/4
23. श्रीभगवद्गीता, 13/19
24. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/5
25. सांख्यकारिका, 22
26. अथर्व वेद, 11/4/3
27. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/7
28. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/8
29. अथर्व वेद, 11/8/1
30. वेदान्तसार,19
31. वेदान्तसार,27,28